प्रेमचंद का दलित साहित्य और स्त्रियां

कृष्ण वीर सिंह सिकरवार
आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट वायपास रोड, गांधी नगर,
भोपाल-462033 (म0प्र0)
मो0 09826583363
ई-मेल:-krishanveer74@gmail.com

वर्ष 1962 में प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने जब प्रेमचंद के अनुपलब्ध साहित्य की खोजबीन का सिलसिला शुरू किया तब उन्होने हजारो पृष्ठों में दबे छिपे प्रेमचंद साहित्य को खोजकर निकाला। जिसमे प्रेमचंद के विभिन्न साहित्य के साथ-साथ उनके द्वारा लिखे गये विभिन्न संपादकीय, लेख, टिप्पणी, पुस्तक समीक्षा, भूमिकायें आदि को "विविध प्रसंग" शीर्षक से तीन भागो में संकलित कर पाठको को प्रथम परिचय कराया। इस बहुप्रसिद्ध संकलन के दूसरे भाग में अमृतराय ने "जागरण" साप्ताहिक में प्रकाशित छोटी बडी टिप्पणियों को 'छूत-अछूत' शीर्षक के तहत शामिल कर प्रेमचंद के दलित विमर्श को पाठको के समक्ष रखा। यह सभी टिप्पणियां 19 दिसम्बर 1932 से लेकर 14 मई 1934 तक प्रकाशित हुई थी। लगभग दो वर्षो में प्रकाशित दलित समाज के संबंध मे प्रेमचंद के विचार खुलकर सामने आते है जिनमे वे दलितो की वकालत करते हुये उनके साथ खडे दिखाई देते है। यह सभी टिप्पणियां लगभग 27 के करीब है।

प्रस्तुत आलेख में इन्ही टिप्पणियों में छुपे प्रेमचंद के दलित समर्थक विचारों को पाठको के समक्ष रखने का प्रयास किया गया है जिसके केन्द्र में दलित समाज व उनका इतिहास है। वर्ष 19 दिसम्बर 1932 को जागरण में प्रकाशित अपने आलेख "महान तप" में प्रेमचंद दलितो के उत्थान का मूलमंत्र सम्मिलित निर्वाचन को मानते है वे कहते है कि-''दलितो के उद्धार का सबसे उत्तम साधन है सम्मिलित निर्वाचन। यही उनके उत्थान का मूलमंत्र है.....इस निर्वाचन मे ऐसे अनुदार व्यक्तियों के लिये स्थान ही नही है जिस पर दलित समाज को विश्वास न हो, जिनसे इसे भलाई की आशा न हो, जिन्हे वह अपना सच्चा हितू न समझता हो.....हमे विश्वास है कि अगर आज किसी गांव के दलित या पासी या मुसहर से जिज्ञासा की जाय तो वह हिन्दू जाति से अलग होना कदापि स्वीकार न करेगा। वह हिन्दू समाज में रहकर अपना उद्धार चाहता है, हिन्दू समाज से निकलकर नहीं। हमारे देखते-देखते कितनी ही जातियां जो पहले नीच और दलित थी आज अपने संस्कारों को बदलकर जनेऊ पहन रही है, अपने आचरण सुधार रही है, अखाद्य पदार्थो का परित्याग कर रही है.....वे अब संध्या करते है, श्राद्ध करते है, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करते है वे अब अपनी सेवा का गौरव समझने लगे है, उनके देवता वही है जो सब हिन्दुओं के है। आदर्श वही है, विश्वास वही है, दृष्टिकोण वही है। हिन्दुत्व उनके अणु-अणु मे भरा हुआ है। उसे आप उनके अन्दर से निकाल नही सकते.....दलितो के लिये अब मंदिर खुलते जा रहे है, कुंओ पर भी वह रोक-टोक नहीं रही।'' (1)

"हमारा कर्तव्य" नामक लेख जो 26 सितम्बर 1932 को जागरण में प्रकाशित हुआ था, में प्रेमचंद के विचार खुलकर सामने आते है उनके अनुसार देश मे फैल अछूतपन के रोग को जडमूल से खत्म कर देगे तभी हमार कर्तव्य पूर्ण होगा। जब हम देश के वर्तमान अछूतपन को जडमूल से नष्ट कर देंगे तभी हमारा कर्तव्य पूरा होगा।" आगे वे कहते है कि "यह युग प्रकाश का युग है इसमे अब अन्धकार नही रह सकता.....अछूत इसीलिये तो अछूत है कि वे जनसमाज के स्वास्थ्य के लिये उनके घरो की सफाई करते है उनकी सेवा करते है। उनमे और अछूतों में क्या अन्तर है? जैसे वे मनुष्य है, अछूत भी है। यदि अछूत उनके घर का मलमूत्र साफ करते है, तो वे भी तो इस कार्य से वंचित नहीं है। वे भी तो रोज सुबह सबसे पहले यही काम करते है। बाल बच्चों के घर में प्रायः सभी वर्ण की स्त्रियों को यह कर्म करना पडता है। रोगकाल में भी मलमूत्र उठाने का काम प्रायः घर के ही लोग करते है। उस समय कोई मेहतर घर मे से मैला उठाने नही आता।'' (2)

14 नबम्वर 1932 को जागरण में प्रकाशित "हरिजनों के मंदिर प्रवेश का प्रश्न" नामक अपने आलेख में हिन्दुओ व दलितो की धार्मिक भावनाओ का बडा सुन्दर वर्णन करते हुये कहते है कि-''उत्तर भारत में तो कुछ देवता ऐसे भी है जिनके पुरोहित हमारे हरिजन भाई ही है। जिस गांव मे चले जाइये, दलितों या भरों के पुरबे मे आपको किसी नीम के वृक्ष के नीचे दस बीस मिट्टी के

बडे-बडे हाथी, लाल रंगे हुये एक जगह रखे हुये मिलेगे। वहीं एक त्रिशूल भी गडा होगा। एक लाल पताका भी पेड से बंधी होगी। यह देवी का स्थान है, इस चबूतरे का पुजारी कोई दलित, पासी या भर होगा। वर्णवाले हिन्दू स्त्री पुरूष बडी श्रृद्धा से देवी के चबुतरे पर जाते है, वहां बतासे, धूपदीप, फूलमाला चढाते है। जब वर्णवाले हिन्दुओं को हरिजनों के इन देवताओ की उपासना करने और हरिजनो को अपना पुरोहित बनाने में शर्म नहीं आती। घृणा का भाव तो वहां किसी तरह आ ही नही सकता-तो हम नही समझते कि हरिजनो के हिन्दू मंदिरो में आ जाने से कौन सा अधर्म हो जायेगा।'' (3)

21 नबम्वर 1932 में प्रकाशित अपने आलेख "अछूतो को मंदिरो में जाने देना पाप है," में प्रेमचंद कहते है कि-''कहा जाता है कि अछूतों की आदते गंदी है, वे रोज स्नान नहीं करते, निषिद्ध कर्म करते है आदि। क्या जितने सछूत है, बे रोज स्नान करते है, क्या काश्मीर और अल्मोडा के ब्राह्मण रोज नहाते है? हमने इसी काशी में ऐसे ब्राह्मणों को देखा है, जो जाडों में, महीने मे एक बार स्नान करते है। फिर भी वे पवित्र है। यह इसी अन्याय का प्रायश्चित है कि संसार के अन्य देशों मे हिन्दू मात्र को अछूत समझा जाता है, फिर शराब क्या ब्राह्मण नहीं पीते। इसी काशी में हजारों मदसेवी ब्राह्मण और वह भी तिलकधारी निकल आयेंगे, फिर भी वे ब्राह्मण है। ब्राह्मणो के घरो में दलित स्त्रियां है, फिर भी उनके ब्राह्मणत्व में बाधा नहीं आती, किन्तु अछूत नित्य स्नान करता हो, कितना ही आचारवान हो, वह मंदिर में नहीं जा सकता। क्या इसी नीति पर हिन्दू धर्म स्थिर रह सकता है? इस नीति के कुफल हम देख चुके, अब सावधान हो जाना चाहियें।'' (4)

14 मई 1934 के अपने आलेख "इस हिमाकत की भी कोई हद है" में प्रेमचंद छूत-अछूत की समस्या से होने वाली एक ह्दय विदारक घटना का बडा ही सजीव चित्रण करते है। यहां वे लुप्त होती मानवीय संवेदना की पराकाष्ठा पर पहुंचते दिखाई देते है। वे कहते है कि-''.....खबर है कि किसी स्थान मे एक कुलीन हिन्दू स्त्री कुऐं पर पानी भरने गयी। संयोगवश कुऐं में गिर पडी। बहुत से लोग तुरन्त कुऐं पर जमा हो गये और उस औरत को बाहर निकालने का उपाय सोचने लगे, मगर किसी मे इतना साहस न था कि कुऐं मे उतर जाता। वहां कई हरिजन भी जमा हो गये थे। वे कुऐं में जाकर उस स्त्री को निकाल लाने को तैयार हुये, लेकिन हरिजन कुयें में कैसे जा सकता था। पानी अपवित्र हो जाता। नतीजा यह हुआ कि अभागिनी स्त्री कुयें में मर गयी।'' (5)

इसके साथ ही प्रेमचंद अपने लोकप्रिय उपन्यास रंगभूमि में दलित पश्न को प्रमुखता के साथ उठाते हैं। रंगभूमि का नायक सूरदास अंधा है व दलित है, इसी सूरदास के आगे सभी शासक, राजा, महाराजा, उद्योगपति आदर के साथ श्रृद्धा से झुकते है तथा उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते है। उपन्यास के अंत में सूरदास का बलिदान किसी से कम नहीं आंका जा सकता है। यह सब सूरदास को नायक बनाकर प्रेमचंद उसके योगदान को चरम स्थिति तक ले आते है।

उपन्यास गोदान मे प्रेमचंद मातादीन-सिलिया के प्रसंग में दलितो द्वारा ब्राह्मण मातादीन के मुंह मे हड्डी डालने जैसा कार्य करवाते है जो प्रेमचंद के दलित दर्शन के क्रांतिकारी रूप को उद्घाटित करता है। इस पूरे घटनाक्रम को प्रसिद्ध दलित लेखक कंवल भारती अपने आलेख 'गोदान और दलित समस्या' मे इस प्रकार व्यक्त करते है कि-''जो ब्राह्मण अछूत को छूने मे और उसे सामाजिक अधिकार देने मे धर्म की हानि समझते है, वे उनकी स्त्रियों से जारकर्म करने में धर्म समझते है। गोदान मे अछूत सिलिया से पंडित मातादीन इसी जारकर्म मे लिप्त है। प्रेमचंद ने इस जारकर्म के खिलाफ दलितो मे विद्रोह दिखाया है। वे इसे अपमान समझते है कि सिलिया ब्राह्मण के साथ रहकर भी दलित है। जब सारी विरादरी की नाक कटवाकर भी दलित ही बनना था, तो यहां क्या घी का लौंदा लेने आयी थी। उसकी मां कहती है। दलित फैसला करते है कि मातादीन को दलित बनाकर छोडेगे। आखिर यह अधर्म क्यों? हम दलित है तो क्या हमारी इज्जत नहीं। तुम बडे नेमी धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे। सिलिया की मां कहती है, यही चुडैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती। दलितों का तर्क है कि तुम हमे ब्राह्मण नहीं बना सकते, पर हम तुम्हे दलित तो बना सकते है और दलितों ने लपककर मातादीन को पकड लिया और उसके मुंह मे एक बडी सी हड्डी का टुकडा डाल दिया.....मातादीन को प्रायश्चित कराया जाता है उसे फिर से ब्राह्मण बनने के लिये गाय का गोबर खाना और गोमूत्र पीना पडा लेकिन सिलिया के बच्चे को देखकर उसमे परिवर्तन आता है। वह सिलिया को अपना लेता है और कहता है, मैं ब्राह्मण नही, दलित ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले, वही ब्राह्मण है, जो धर्म से मुंह मोडे, वही दलित है। गोदान मे यही एकमात्र कथा है, जो दलित समस्या को उठाती है।'' (6)

प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ डॉ0 कमल किशोर गोयनका अपनी पुस्तक प्रेमचंद: सम्पूर्ण दलित कहानियां में दलित विमर्श के संबंध में कहते है कि-''दलित लेखको को कहानी में दलित समाज की पक्षधरता नही अपमान दिखाई देता है, किन्तु प्रश्न यह है कि साहित्य का मूल्यांकन तथा कसौटी धर्म और जाति के आधार पर होगी या मानवीय संवेदना एवं सरोकारों के आधार पर?

साहित्य में न कोई हिन्दू है, न मुसलमान, न ब्राह्मण, न दलित, न कायस्थ और न वैश्य। वह एक व्यक्ति होता है और वह अपने संपूर्ण परिवेश और मनोवृत्तियों के साथ सामने आता है, अतः उसके गुणावगुण उसकी जाति में कैसे हो सकते है?'' (7)

समग्रतः उपरोक्त कुछ उदाहरणो द्वारा यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद ही ऐसे रचनाकार थे जिन्होने विभिन्न वर्गो द्वारा फैलाये गये छल प्रपंच, लूट-खसोट, धार्मिक भावना की आड मे गरीबो का शोषण आदि कई ऐसे विषयो पर खुलकर लिखा। शायद ही उस समय किसी दूसरे रचनाकार ने ऐसा लिखने की हिम्मत की होगी। उनका साहित्य आम पाठको के लिये था न किसी जाति वर्ग के लिये। चूंकि जागरण साप्ताहिक में कई अन्य और भी ऐसी टिप्पणियां प्रकाशित है जिनसे उदाहरण दिये जा सकते है परन्तु स्थानाभाव के कारण यह संभव नहीं था।

नोटः-उपरोक्त आलेख में जातिसूचक शब्द की जगह दलित शब्द का इस्तेमाल किया गया है।

संदर्भः-

(1) विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ: 439

(2) विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ: 441

(3) विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ: 446

(4) विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ: 449

(5) विविध प्रसंग, भाग-2, हंस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ: 477

(6) साखी, त्रैमासिक पत्रिका, अक्टूबर 2008-मार्च 2009, अंक: 18-19, पृष्ठ: 98-99

(7) प्रेमचंद: संपूर्ण दलित कहानियां, भूमिका, सस्ता साहित्य मण्डल, नईदिल्ली, पृष्ठ: 15